Chapter - 8

अष्टम अध्याय

आर्थिक तथा कला, साहित्य, संस्कृति पक्ष

[अ] आर्थिक पक्ष

प्रस्तावना

आर्थिक विषमता का चित्रण

चरखा एवं खादी के महत्त्व का प्रतिपादन

यांत्रिकता का विरोध

उपसंहार ।

[आ] कला, साहित्य, संस्कृति पक्ष

प्रस्तावना

कलासंबंधी दृष्टिकोण

शिक्षा संबंधी विचार

मातृभाषा के महत्त्व का निरूपण

उपसंहार ।

[अ] आर्थिक पक्ष :

प्रस्तावना :

मानव के सर्वांगीण विकास में आर्थिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। कोई भी राष्ट्र स्वतंत्र तभी रह सकता है जब उसकी आर्थिक नींव सुदृढ़ हो। कला, साहित्य, संस्कृति, व्यापार, वाणिज्य एवं दूसरे क्षेत्रों का विकास उसकी आर्थिक स्थिति पर पूर्णतया निर्भर रहता है। यहाँ तक कि आत्मनिर्भरता देश के स्वातंत्र्य रक्षण में सबसे महत्वपूर्ण योगदान देती है। आज की दुनिया में कोई भी देश दूसरे देशों से संबंध बनाये बिना नहीं रह सकता। किंतु अधिकांश देश परस्पर व्देषपूर्ण प्रतिव्दन्व्दिता में उतर आते हैं। समृध्द देश अपेक्षा करते हैं कि अर्धविकसित और आर्थिक रूप से कमजोर देश हमेशा उनके मोहताज रहें और वे उन पर हावी रहें। उनका उद्देश्य कमजोर देशों का आर्थिक शोषण करना ही रहता है। गांधीजी ने इस सत्य को पा लिया था और इसीलिये जहाँ एक ओर उन्होंने देश को स्वतंत्र बनाने के लिये आंदोलन चलाये, वहीं देश की जनता को उन्होंने यह पाठ भी पढ़ाना शुरु किया कि वे लघु उद्योगों को अपनाकर आत्मनिर्भर बने

ताकि देश का पैसा देश में रहे और देश आर्थिक दृष्टि से सबल बने। विदेशी कपडों का बहिष्कार, खादी एवं अन्य लघु उद्योगों व्दारा बनाई गई वस्तुओं का उपयोग और ऐसे ही दूसरे कार्यक्रम उन्होंने इसी लक्ष्य से चलाये थे।

बापू भारत में आर्थिक अभ्युदय चाहते थे। देश की आर्थिक विषमता को देखकर उन्हें क्षोभ होता था। आर्थिक वैषम्य के कारण पूंजी कुछ ही लोगों के हाथों में केन्द्रित होती थी, तथा धन के अभाव में असंख्य निर्धन कृषक एवं मजदूर भूखा मरने पर विवश थे। गांधीजी को यह सामाजिक आर्थिक विषमता को देख खेद होता था। वे इसे अन्याय एवं पाप समझते थे। अत: उन्होंने आर्थिक शोषण की वृत्ति पर प्रहार करते हुए ट्रस्टीशिप के सिध्दांत का ही प्रतिपादन किया। ट्रस्टीशिप का यह सिध्दांत अमीर गरीब के बीच की विशाल खाई को पाटने में सहायक होता है।

आर्थिक समानता के क्षेत्र में उनका मंतव्य था कि प्रत्येक व्यक्ति को संतुलित आहार, रहने के लिये स्वास्थ्यप्रद घर तथा शरीर ढंकने के लिये पर्याप्त कपड़े पाने का पूर्ण अधिकार है। पूंजीपतियों का यह कर्तव्य है कि वे गरीबों को उनकी न्यायिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करे। वे अपनी पूंजी का स्वयं को मालिक न समझते हए ट्रस्टी समझे और अपनी आवश्यकतानुसार अर्थग्रहण कर शेष धन जन सेवा के लिये उपयोग में लाये। जब अमीर लोग अपनी स्वेच्छा से अर्थ त्याग करेंगे तभी आर्थिक असमानता की समस्या का अंत होगा। लेकिन मजदूरों का भी अपने मालिक के प्रति कर्तव्य है। मजदूरों को अपनी शक्ति के अनुसार उद्योग व्दारा ऊँची से ऊँची मजदूरी पाने का अधिकार है, किंतु साथ ही उसका यह कर्तव्य भी है कि उसे अपनी मजदूरी के एवज में अपनी पूरी योग्यता के अनुसार काम भी करना चाहिए। इस तरह यदि पूंजी और श्रम में मेल हो जाय तथा वे एक दूसरे के प्रति सम्मान का भाव रखे तो हड़ताल होने की संभावना ही खत्म हो जाय। ट्रस्टीशिप के सिध्दांत के अतिरिक्त गांधीजी ने आर्थिक समानता लाने के लिये शोषण रहित ग्रामोद्योग के विकास के प्रति भी आग्रह प्रकट किया था।

आर्थिक विषमता का चित्रण :

गांधीजी के इन आर्थिक विचारों का कवियों के साहित्य पर विशेष प्रभाव पड़ा। उन्होंने समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता की ओर दृष्टिपात किया। उन्हें भी मजदूर और पूंजीपतियों का वर्ग, शोषक एवं शोषित वर्ग की विषमता को देखकर दुख होता था। वे मजदूरों के प्रति पूंजीपतियों द्वारा किये जानेवाले शोषण एवं अत्याचार से परिचित थे। वे चाहते थे कि समाज में व्याप्त यह आर्थिक विषमता का दूषण समाप्त हो जाय।

सियारामशरणजी ने भी 'अनाथ' कविता में मोहन की दयनीय अवस्था का मर्मस्पर्शी चित्र अंकित करते हुए आर्थिक विषमता की ओर ही संकेत किया है :

"दरोगाजी थे लगे हुए भोजन में,
उनको चिंता थी नहीं किसी की मन में।
उनका कुत्ता उस समय वहाँ पर आया,
खाना उसने भी वहीं पेट भर खाया।"[1]

दरोगाजी को मोहन की रत्तीभर भी परवाह नहीं थी। मोहन पिछले दो दिन से फाका कर रहा था। उसका रुग्ण पुत्र भी भूखाप्यासा मृत्यु से संघर्ष कर रहा था। मोहन का दुर्भाग्य इतने पर भी खत्म नहीं होता। जब वह लोटा गिरवी रखकर चून लेकर घर वापस लौट रहा होता है तभी उसे बेगार में पकड़ लिया जाता है। दरोगाजी का सिपाही उसके हाथ में पंखे की डोर थमाकर उसे कड़ी धूप में खड़ा कर देता है। दरोगाजी का कुत्ता गरमी से व्याकुल हो हांफ रहा है। दरोगाजी से कुत्ते की यह व्याकुल दशा देखी नहीं जाती। वे मोहन पर क्रोधित हो उठते हैं, उस पर गालियाँ एवं चाबुक बरसाये जाते हैं। मोहन जठराग्नि की ज्वाला से

---

१. अनाथ : पृ. १६

निढ़ाल हो रहा है, दूसरे असहय गरमी से उसके प्राण निकल रहे हैं. ऐसी स्थिति में भी वह बिना किसी प्रकार का प्रतिरोध किये अपनी पारिवारिक चिंताओं में घिरकर तेजी से पंखा झलने लगता है। वह दुर्भाग्य के हाथों इतना विवश हो जाता है कि अन्याय के प्रतिकार की शक्ति उसमें नहीवत रह गई है। वह सबकुछ मौन रहकर सहता है। अपने दुर्भाग्य को कोसने के अलावा उसके सम्मुख अन्य कोई उपाय नहीं है :

"कुत्ते तक भी सानंद पेट भरते हैं,
हैं हमीं लोग जो अन्न विना मरते हैं।
कुत्तों से भी हम लोग गये बीते हैं,
धिक्कार हमें, हम लोग तदपि जीते हैं।"[१]

इन पंक्तियों में कवि ने आर्थिक विषमता को ही उद्घाटित किया है। एक ओर पूंजीपति बहुत सी पूंजी व्यसन में व्यर्थ ही उड़ा देते हैं, दूसरी ओर मोहन जैसे असंख्य दीन-दुर्बल मानव बच्चों के लिये मुट्ठीभर अन्न जुटाने के लिये अनथक प्रयत्न करते हुए दृष्टिगत होते हैं। इस स्थिति में भगवान को याद करने के अलावा उनके पास अन्य कोई उपाय नहीं है। कवि का मन इस घोर विषमता को देखकर क्षुब्ध हो उठता है। निम्नपंक्तियों में कवि के संवेदनशील हृदय की वेदना ही प्रकट हुई है।

"कोई तो बहुवित्त व्यसन में व्यर्थ उड़ावें,
बच्चों के भी लिये अहो! हम अन्न न पावें!
कैसा है यह न्याय भला भगवान, तुम्हारा ?
क्या करना है कहो तुम्हें अब और हमारा ?"[२]

यह मोहन इतना असहाय हो गया है कि आज वह कहाँ जाय, किससे भीख माँगे, अपने बच्चों को बचाने के लिये अन्न कहाँ से जुटायें, कुछ भी उसे समझमें नहीं आता। आज उसे विकराल काल सर्वत्र मुँह फैलाये खड़ा दिखाई देता है। और उसे तिनके का भी आधार नहीं दिखाई देता। इस प्रकार उसकी दशा अत्यंत ही दयनीय है। महाजनों ने उसे छार-खार कर

---

१. अनाथ : पृ. १६
२. वही : पृ. ९

डाला है। शोषकों के व्दारा शोषित समाज पर कियेजानेवाले इन अत्याचारों को देखकर कवि का संवेदनशील हृदय क्रंदन करने लगता है। पूंजीवाद के कारण मानव अधःपतन की ओर अग्रसर हो रहा है। पूंजीवादी अपने वैयक्तिक स्वार्थ के लिये आर्थिक विषमता को प्रोत्साहन देते हैं। मजदूर, किसान और निम्न वर्ग के लोग अपना खून पसीना बहाकर सच्चा परिश्रम करते हैं, अपने खून पसीने से कल-कारखानों को विकसित करने में सहायक बनते हैं, किंतु उस सम्पत्ति का सर्वाधिक महत्तम भाग पूंजीपति, जमींदार एवं मालगुजार वाले लोग ही हड़प लेते हैं। श्रमिक वर्ग जो वास्तव में इस संपत्ति का बराबरी का हकदार है, उसे कुछ भी हाथ नहीं लगता। कवि की आत्मा इस अन्याय को देखकर वेदना विव्हल हो उठती है। उसके हृदय का चीत्कार इन शब्दों में फूट पड़ता है :

"लोहू-पसीना एक कर हम अन्न उपजाते यहाँ,
पर वही अपना अन्न ही क्या हम कभी पाते यहाँ ?
कुछ तो हड़प जाते हमारे सेठ साहूकार हैं,
बाकी बचे तो छीन लेते हाय! माल गुजार हैं।"[१]

इस तरह मालगुजार, महाजन, सरकारी कर्मचारी सब चील कौओं की तरह श्रमिकों का मांस नोचने की ताक में रहते हैं तथा अनैतिक साधनों व्दारा उनसे अतिरिक्त श्रम या बेगार करवाते हैं और बदले में फूटी कौड़ी तक नहीं देते :

"हमको पकड़ बेगार में जो लोग लेते काम हैं-
अन्याय कैसा है कि वे देते न एक छदाम है।"[२]

मोहन इस अन्याय अत्याचार को सहते सहते इतना दुर्बल हो गया है कि अब उसकी सहनशक्ति जवाब दे गई है। वह सोचता है कि क्या यह अन्याय अत्याचार कभी दूर नहीं होगा। यदि हमें मुट्ठीभर अन्न को तरसाना था तो हमें पैदा ही क्यों किया :

---

१. अनाथ : पृ. ३०
२. वही : पृ. २९

"अन्याय अत्याचार क्या यह बंद अब होगा नहीं,
क्या दूर भूतल से प्रभो, छल छंद यह होगा नहीं ?
जो एक मुट्ठी अन्न को था हाय! तरसाना हमें,
देकर सुतादिक उचित था क्या नरक दिखाना हमें ?"[1]

दीन दरिद्रों के प्रति सहानुभूति रखनेवाले इस मानवतावादी कवि को श्रमजीवीयों, मजदूरों एवं किसानों के प्रति विशेष प्रेम है। अत: वह अपने देशवासियों से अहिंसक क्रांति के व्दारा क्रमश: इस विषमता का अंत करने की प्रार्थना करता है। कवि ने मोहन को दलितवर्ग के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित कर सेठ साहूकार, मालगुजार एवं पूंजीपतियों को चुनौती दी है :

"हे देशवालों, तुम सतालो और जितना हो सके,
हम दीन हैं तुम बल जतालो और जितना हो सके,
यह याद रखना, किंतु तुम भी बच नहीं सकते कभी-
बस एक घर की आग से है गाँव जल जाता सभी।"[2]

इस आर्थिक विषमता के फलस्वरूप मानवता का एक बड़ा अंश घोर दारिद्र्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य है। गुप्तजी को चीथड़ों में लिपटी हुई दीन हीन मानवता के प्रति विशेष सहानुभूति है। उन्होंने समाज के दलित वर्ग के प्रति अपनी संवेदना प्रकट कर मानवतावादी विचारों की ही पुष्टि की है। वे लिखते हैं :

"सहसा यह मेरा मनोविहग
उड़ उड़ जाता है निकट-दूर, -
उन लोगों में, - जो छिन्न वसन,
अच्छिन्न सतत जिनका अनशन,
जिनके माटी के गलित पात्र
रख नहीं पा रहे हैं जल कण।"[3]

---

१. अनाथ : पृ. २९
२. वही : पृ. ३०
३. दैनिकी : 'स्मरण' कविता : पृ. ३०

'स्वप्न भंग' नामक कविता में कवि ने धरती के उपेक्षित एवं दीन-हीन प्राणियों के प्रति संवेदना प्रकट कर यह स्पष्ट करना चाहा है कि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में मानव जीवन कितना पीड़ामय हो जाता है। निम्न पंक्तियों में कवि ने इसी भावना को साकार किया है :

"भग्न ध्यान मैंने अवलोका सूना कमरा अपना।
पिटी बालिका का कटु क्रंदन नीचे से आता था,
नहीं रूक रहा था ताड़नरत कर कुपिता माता का।"[1]

'दो पैसे' कविता में कवि ने पैसे की महत्ता को ही प्रदर्शित किया है। पैसे के अभाव में मनुष्य भूखा, नंगा व बेघर कभी संतुष्ट नहीं रह सकता। पैसे के बल पर ही दुनिया चलती है। धन की शक्ति से ही राजनीतिज्ञ नित्य नये हथकण्डे अपनाते हैं। देश विदेश में, प्रत्येक दिशा में एकमात्र अर्थ की ही चर्चा है। पैसे के अभाव में राजभुवनों की संपदा और सुंदरता श्री हीन हो जाती है, पैसे के अभाव में श्रीमंत लोग असंतुष्ट रहते हैं। इसी धन के पीछे वीर लोग खुला कृपाण लिये हिंसा पर उतारू हो जाते हैं। जब राजनीतिज्ञ श्रीमंत एवं वीर सभी लोगों की दृष्टि में अर्थ का महत्त्व है तब उस भूखे दरिद्र इंसान को धन की आकांक्षा होना स्वाभाविक ही है। अमीर गरीब सबके लिये पैसे का समान महत्त्व है। गरीबों को भी जीवन निर्वाह के लिये धन कमाने का उतना ही अधिकार है, जितना अमीरों को है :

"सबके मुँह में पानी है जब, तृषित दृगों से कैसे,
ताक रहा भूखा दरिद्र वह मेरे वे दो पैसे।"[2]

इस प्रकार प्रस्तुत कविता में कवि ने पैसे के महत्त्व को ही प्रदर्शित किया है।

'आर्द्रा' में भी कवि ने दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए समाज में वर्तमान आर्थिक विषमता को अनेक दुखों का कारण बताया है। 'अब न करूँगी ऐसा' कविता में कवि ने ऊँचनीच की सामाजिक समस्या का

---

१. दैनिकी : 'स्वप्न भंग' कविता : पृ. ४४
२. वही : 'दो पैसे' कविता : पृ. ९

व्यंग्यात्मक चित्रण करते हुए आर्थिक वैषम्य की ओर संकेत किया है। इसमें एक ओर गरीबी से पीड़ित मुलिया को अन्न एवं पैसे के अभाव में फांके करते हुए चित्रित किया गया है, दूसरी ओर मालिक के कुत्ते को भरपेट भोजन पाते एवं मनुष्य से भी अधिक लाड़प्यार पाते चित्रित कर कवि ने आर्थिक वैषम्य की ओर ही संकेत किया है :

"अरे, अरे, यह कैसा हुआ अनर्थ बड़ा!
इस प्रलयंकर ऊष्मा का मारा,
हाँफ रहा है मेरा कुत्ता बेचारा।
छज्जे के नीचे कोने में-
सिमटी पड़ी जहाँ छाया,
पड़ा वहीं यह, फिर फिर जीभ निकाल,
हो रहा है कैसा बेहाल।"[1]

कुत्ते की दुर्दशा को देखकर मालिक का क्रोध सातवें आसमान पर पहुँच जाता हैं। वह मुलिया को बुलाने के लिये नौकर भेजता है। इधर मुलिया की स्थिति कुत्ते से भी अधिक दयनीय है। उसके घरमें नाज नहीं था अत: वह भूखी प्यासी ही घरसे आई थी। उसे चक्कर आ रहे थे। किंतु उसकी बात वहाँ कौन सुनता? मालिक का क्रोध उसे सम्मुख देखकर एक साथ ही उबल पड़ा, गुस्से से उसका मुँह लाल हो गया, आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ बरसने लगी। मालिक के रौद्र रूप को देखकर निर्धन बालिका सहम गयी और कम्पित स्वर में बोली :

"आ रहे थे मुझको चक्कर-से।
नहीं था मेरे घर में नाज;
विना कलेवा किये इसीसे आज
आई थी मैं घर से।
मैंने नहीं पिया था जल भी।
नहीं मिली थी मुझे मजूरी कल भी।
कुत्ते को नहलाती हूँ मैं, अब न करूँगी ऐसा।"[2]

---
१. आर्द्रा : 'अब न करूँगी ऐसा' : पृ. १२७
२. वही : पृ. १२९

मुलिया की दुर्दशा का हाल सुनकर मालिक का समस्त क्रोध शांत हो गया। उन्हें अपने इस क्रूरता पूर्ण व्यवहार पर ग्लानि हुई। उनके कानों में मुलिया का यह कातर स्वर गूंजता रहा : "अब न करूँगी ऐसा" इस प्रकार प्रस्तुत कविता में कवि ने निर्धन मुलिया के प्रति मानवतावादी चेतना को प्रकट करके गांधीवादी अर्थनीति का ही समर्थन किया है।

'नृशंस' कविता में भी कवि ने शोषण से पीड़ित एक निर्धन परिवार की करुण कथा अंकित की है। इसमें एक ऐसे निर्धन पिता की विवशता का अंकन है जो घोर परिश्रम करके भी भरपेट भोजन प्राप्त नहीं करता। उसपर भारी ऋण का बोझ है। यह ऋण पीढ़ी दर पीढ़ी वंशगत रोग के समान बढ़ता ही चला जाता है। यहाँ तक कि उसे अपना शरीर भी ऋण दाता को बेच देना पड़ता है :

"तिल तिल स्थान इस गेह का;
रुधिर प्रवाह तक अपनी ही देह का
हो चुका है आज ऋणदाता का;
कैसा अभिशाप है विधाता का!
मरण-समुद्र में भी डूबने न पायगा,
ऋण यह वंशगत रोग-सम
विषम -
दुरंत विष छोड यहीं जायगा।"[1]

इस पर भी समाज के बड़े कहलानेवाले धनी लोग अपने क्षुद्र स्वार्थ की पूर्ति के लिये उन्हें शोषण की चक्की में पीसने को तत्पर हैं। इससे बड़ा अन्याय और क्या हो सकता है? 'नकुल' में समाज के धनिक वर्ग की शोषण वृत्ति पर कुठाराघात किया गया है :

---

१. आर्द्रा : 'नृशंस' कविता : पृ. ३२

"कथित बड़े जन सोच रहे हैं – इस भूतल के,
जन जितने हैं जहाँ कहीं हलके से हलके,
रहने उनके लिये न देंगे संजीवन-कण,
सुख सब अपने अर्थ, अन्य का शोषण-शोषण ।"[1]

इस शोषण के प्रतिक्रिया स्वरूप दलितों में विस्फोट की भावना जागृत होती है और इससे वसुधा की शांति छिन्नभिन्न हो जाती है :

"उन दलितों में प्रतिक्रिया विस्फोटित होती,
दु:शासन में उभर शान्ति वसुधा की खोती ।"[2]

अत: यदि हमें धर्म का रक्षण करना है तथा स्थायी शांति की स्थापना करनी है तो सर्वत्र प्रेम एवं त्याग की भावना का प्रसारण करना अपेक्षित है :

"करना है यदि हमें यहाँ यह पाप निवारण,
हो अभीष्ट सर्वत्र प्रेम का पूर्ण प्रसारण,
करना होगा बड़ा त्याग निज सुखजीवी को,
होना होगा स्वयं समर्पित गाण्डीवी को ।"[3]

इस प्रकार 'नकुल' में छोटों की रक्षा के लिये, त्याग का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है । जब सुखजीवी अपने बड़े से बड़े स्वार्थ का त्याग करेगा तभी स्थायी शांति की स्थापना संभव हो सकेगी । त्याग ही वह मार्ग है जिससे संसार में शांति कायम रह सकती है । जिससे काल के ऊपर सुविजय प्राप्त होती है । इस कविता में कवि ने समान अर्थ वितरण के स्थान पर संपूर्ण त्याग को ही समस्या का हल बताया है । गांधीजी ने समान अर्थ वितरण पर जोर दिया था, किंतु यहाँ जो समस्या उठाई गई

---

१. नकुल : पृ. ११०
२. वही
३. नकुल : पृ. १११

है उसमें समान वितरण से काम नहीं चल सकता। त्याग ही समस्याका समाधान कर सकता है। प्रस्तुत दृष्टांत में मणिभद्र के पास अमृत की केवल एक बूँद है और मृतकों की संख्या पाँच है जिन्हें उस अमृत की आवश्यकता है। इस स्थिति में यदि समवितरण का सिध्दांत अपनाया जाय तो समस्या का हल पाना कठिन है। यहाँ त्याग ही इस समस्या को हल कर सकता है और यह त्याग छोटों के पक्ष में ही होना चाहिए। बडप्पन का यथार्थ उपभोग इसी त्याग में है। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:' यह त्याग पूर्णतया स्वेच्छा से युधिष्ठिर के समान किया जाना चाहिए तभी उसका महत्व है :

"लेना होगा निखिल-क्षेम-व्रत निर्भय हमको।
देना होगा बड़ा भाग लघु से लघुतम को।"[1]

इस प्रकार 'नकुल' काव्य में कवि ने छोटों के निमित्त स्वेच्छा से त्याग का आदर्श प्रकट कर गांधीजी के ट्रस्टीशिप सिध्दांत का ही समर्थन किया है। इस प्रकार सियारामशरणजी की कविताओं में आर्थिक वैषम्य का सफल अंकन हुआ है।

सर्वहारा वर्ग के प्रति संवेदना :

व्दिवेदी युगीन कवियों ने कृषकों एवं मजदूरों की दयनीय अवस्था के करुणा पूर्ण चित्र अंकित किये हैं। सियारामशरणजी भी मजूरों, गरीबों और कृषकों की पीड़ा से स्वयं पीड़ित हैं। इन सर्वहारावर्ग के लोगों के प्रति उनकी सहानुभूति अधिकांश कविताओं में व्यक्त हुई है। उन्होंने 'दैनिकी' में मजदूरों की दयनीय अवस्था के मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किये हैं। कवि इस तथ्य से भलीभाँति परिचित है कि समाज का सर्वहारा मजदूर वर्ग अपने तनबदन की सुदबुध बिसराकर कठोर परिश्रम करता है :

"यह मजूर, जो जेठ मास के इस निर्धूम अनल में
कर्ममग्न है अविचल अविकल दग्ध हुआ पल पल में;

---

१. नकुल : पृ. ११२

यह मजूर, जिसके अंगों पर लिपटी एक लँगोटी;
यह मजूर, जर्जर कुटिया में जिसकी वसुधा छोटी।
किस तप में तल्लीन यहाँ है भूख प्यास को जीते,
किस कठोर साधन में इसके युग के युग हैं बीते।"[1]

'दैनिकी' की अधिकांश रचनाएँ लोकमांगलिक चेतना से आप्लावित है। इनमें या तो सामाजिक व्यवस्था के पुनर्गठन की प्रेरणा है या उपेक्षित और शोषित समुदाय के प्रति संवेदना। कवि युगों से पददलित निरीह त्रस्त मानवों के प्रति करुणाभाव प्रदर्शित कर मानवता का संदेश देता है। इस कविता में डाकुओं का अपनी शक्तिका दुरुपयोग करना, निर्धन भिखमंगोंके गलित-पात्र तथा फटेवस्त्र, निर्धन प्राणियों पर अत्याचार तथा उनका शोषण आदि घटनाएँ जो कवि ने वर्णित की हैं ये घटनाएँ कवि के संवेदनशील मन को अवसाद पहुँचाती है।

'बिरजू' कविता में बिरजू नामक एक मजदूर की कारुणिक स्थिति का चित्रांकन किया गया है। वह प्यासा होने पर भी चक्की पर काम करता है। कठोर परिश्रम के इस कार्य को कम समय में कर लेना भी उसके लिये घातक है, क्योंकि उसे भय है कि मालिक उसे बैठा हुआ देखकर गलत न समझे। कवि का मन इस मजूर की दयनीय अवस्था से द्रवित हो उठता है। उन्होंने इसी करुणा से अभिभूत होकर मानवतावादी चेतना की अनूठी अभिव्यक्ति की है :

यह जेठ मास, इसमें सब को
लगती है फिर फिर विषम प्यास,
जल नहीं माँगता है पैसा,
विजयी के मुख पर हर्ष-हास।
वह नहीं बैठ पाया छिन भर
वह चक्की फिर से गई रीत,

---

१. दैनिकी : 'मजूर' कविता : पृ. १७

उस निर्दलनी पर भी उसकी
कितनी छोटी वह क्षणिक जीत।"[1]

'नर किंवा पशु' कविता में भी एक निर्धन मजदूर की दयनीय अवस्था का अंकन कवि ने किया है। मजदूर स्वयं इतना अकिंचन है कि वह अपनी रुग्ण पत्नी की दवा करना तो दूर उसे भरपेट भोजन भी नहीं दे सकता। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके शव को जलाने के लिये इंधन भी नहीं खरीद सकता। किंतु उसे इस बात का संतोष है कि उसकी पत्नी मर कर प्रतिदिन भूखे रहने से बच गई :

"रोया नहीं, नहीं यह बिलपा, आँखे भी थी रुखी,
अच्छा हुआ, बची वह मरकर, अब न रहेगी भूखी।"[2]

इसी प्रकार 'विकट' कवितामें भी कविने एक ऐसी बधू का चित्र अंकित किया है जो अभी अभी कुएँ से पानी की खेप लिये जा रही थी। रोग की दुर्दम शक्ति ने उसे परास्त कर दिया। दूसरी खेप ले जाने से पूर्व ही वह स्वर्ग लोक को सिधार गयी। सियारामशरणजी कहते हैं :

"कब से उस तारुण्य-लता के हृदय-मध्य-रुज-विषधर
गरल ग्रंथि निज नित्य बढ़ाकर ताक रहा था अवसर।"[3]

इसी प्रकार 'खनक' कविता में एक ऐसे मजदूर का चित्र अंकित है जो कुआँ खोद रहा है। अभी थोड़ी देर में उसके परिश्रम के फलस्वरूप सरस जलधारा फूटेगी। सारा प्यासा लोक आनंदित हो उठेगा। खनक कुआँ खोदते खोदते थक गया है। कवि उसे उद्‌बोधन देता है :

"कंकड़-पत्थर का कठिन साथ,
माटी ही यह लग रही हाथ;

---

१. दैनिकी : 'बिरज' कविता : पृ. ३४-३५
२. वही : 'नर किंवा पशु' कविता : पृ. ५८
३. वही : 'विकट' कविता : पृ. ५३

कुछ इधर-उधर से अकस्मात-
जल की सैंटों के भी फुहार,
हे खनक, किये जा कूप-खनन ,
तू यहाँ बीच में ही न हार।"[1]

इस प्रकार 'दैनिकी' में कड़ी धूप में परिश्रम करनेवाले, अपनी झोंपड़ी के नीचे दूसरों को आश्रय देनेवाले, कठिनाइ से संघर्ष करते हुए यत्नपूर्वक जीवन का बोझ वहन करनेवाले समाज के दीनहीन सर्वहारा वर्ग के प्राणियों के प्रति संवेदना प्रकट हुई है। इसमें कवि ने मजूर की करुण दशा का चित्रांकन करते हुए उसकी विजय के प्रति भी दृढ़ विश्वास प्रकट किया है :

"अब ऐसा लगता है, इसके तप से विश्व विकल है,
वर्तमान के बैजयंत में सहसा उथल-पुथल है।
डोल उठा हत बल इन्द्रासन, देखो, भय-कम्पन-मय;
नया इन्द्रपद इसके हित ही निश्चित है निस्संशय।"[2]

इस प्रकार इसमें शोषितों की करुण दशा का चित्र अंकित कर जनतंत्रात्मक शासन की ओर भी संकेत किया है। यह वास्तव में उस समय युग की पुकार थी।

'प्रस्तर जात' कविता में कवि ने वर्तमान कवि का आहवान करते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि सर्वहारा वर्ग की दयनीय अवस्था पर केवल अश्रुपात करना ही अभीष्ट नहीं है, उनको दया का पात्र समझना उनके प्रति अन्याय करना है। आज के सर्वहारा वर्ग के जागरण की ओर संकेत करते हुए कवि ने शोषकों के प्रति चुनौती का स्वर प्रकट किया है :

"करता है क्या अरे मूढ़ कवि, यह क्या करता,
उत्पीड़ित के अश्रु लिये ये कहाँ बिचरता ?

---

१. दैनिकी : 'खनक' कविता : पृ. ३७
२. वही : 'मजूर' कविता : पृ. १७

दिखा दिखा कर इन्हें न कर अपमानित उसको,
लौटा आ तू इन्हें उसी पाषाण-पुरुष को।"[1]

इस प्रकार "इसमें शोषितों के लिये अहिंसा और कष्ट सहन का उपदेश नहीं है। बल्कि जो कवि सर्वहारा वर्ग की दशा पर आँसू बहाकर शोषकों में करुणा उत्पन्न करना चाहते हैं, उन्हें 'दैनिकी' का कवि बहुत ऊँचा उठाकर ललकारता है।"[2]

आज इस शोषण के कारण सर्वहारा वर्ग भी प्रबुध्द हो चुका है उनमें विस्फोट का बीज अंकुरित हो गया है :

"ज्वाला-गिरी के बीज।-
क्रूर शोषण से जमकर।
फूट पड़े हैं ठौर ठौर आग्नेय विकटतर।
काँप उठी है धरा उन्हीं के विस्फोटन में,
फैलगई प्रलयाग्निशिखा यह निखिल भुवन में।"[3]

यहाँ कवि ने सर्वहारा वर्ग के जागरण की ओर संकेत करते हुए शोषकों के प्रति चुनौती का स्वर ही अभिव्यक्त किया है।

<u>ट्रस्टीशिप का सिध्दांत :</u>

समाज में आर्थिक विषमता का अंत करने के लिये तथा दरिद्रों की दशा सुधारने के लिये धनिकों का स्वेच्छा से अर्थ त्याग करना अपेक्षित है। इस संबंध में गांधीजी का विचार था कि यदि धनिक वर्ग मानवतावादी रुख अपनाकर अपना धन गरीबों की सेवा में व्यय करें, तब ही आर्थिक समानता की कल्पना साकार हो सकती है। 'चोर' और 'अब न करूँगी ऐसा' कविता में निर्धनों के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह गांधीवादी

---

१. दैनिकी : 'प्रस्तर जात' कविता : पृ. ६०
२. सियारामशरण गुप्त : सं. डॉ. नगेन्द्र : ले. श्रीरामधारी सिंह दिनकर : पृ. १२०
३. दैनिकी : 'प्रस्तरजात' कविता : पृ. ६०

विचारधारा के सर्वथा अनुकूल है। निर्धनों के प्रति उपेक्षा भाव के कारण ही समाज में अशांति एवं अव्यवस्था का निर्माण होता है। कवि ने समाज में निम्न वर्ग की हीन भावना को दूर करने के लिये ही गांधीवादी अर्थ व्यवस्था की ओर संकेत किया है। "गांधीवाद कहता है कि हम अमीर के हृदय को इस तरह बदल देंगे और उसके शोषण का मुँह इस तरह बंद कर देंगे कि वह स्वयं अपनी खुशी से साधारण लोगों की श्रेणी में उतर आयेगा। यह परिवर्तन ऊपर से लादा हुआ परिवर्तन न होकर हृदय परिवर्तन होगा।"[1] अपराधी सच्चे हृदय से अपनी गल्ती का पश्चाताप करे यही हृदय परिवर्तन का लक्षण है। 'चोर' कविता में कवि ने मालिक का विधवा, नौकरानी के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण दिखाकर अंत में उसके पश्चाताप का हृदयग्राही चित्र अंकित किया है :

मन को न दे सका मैं तोष आप।
विधवा अभागी का असहय ताप।
करने विदग्ध लगा मेरी देह भर को ,
भेजा एक आदमी दयावती के घर को।"[2]

मजदूरी का ऋण तो परस्पर प्रेमभाव से चूकता है अन्य धन देने से नहीं। इस कविता में यही भाव कवि ने व्यक्त किया है। मालिक को रह रह कर इस बात का पश्चाताप होता है कि उन्होंने व्यर्थ ही उस अबला विधवा नारी पर चोरी का घोर कलंक लगाया। वे उसे खोजकर यह नहीं बता पाये कि वह निर्दोष है। उसे इस बात का खेद है कि उसके व्दारा लादी गई अपराध की उस कलंक कथा की असहय वेदना को सहती हुई वह न जाने कहाँ भटक रही होगी :

"लादकर मेरे अपराध की कलंक कथा,
सह के असहय व्यथा

----
१. गांधीजी की देन : डॉ. राजेन्द्र प्रसाद : पृ. ५६
२. आर्द्रा :'चोर'कविता : पृ. ८३

जानें किस गुप्त-वास में है कहाँ;
आभी नहीं सकती है आज वह हाय! यहाँ।"[१]

इन पंक्तियों में मालिक का नौकरानी के प्रति दयाभाव ही प्रकट हुआ है। यह दयाभाव ही उसकी मजदूरी का ऋण है। कवि गरीबों को दलित एवं पीड़ित अवस्था से उबारना चाहता है। अत: 'दूर्वादल' की 'बाढ़' शीर्षक कविता में कवि ने समाज के धनिक वर्ग को स्वेच्छा से गरीबों की सहायता करने का पुण्य कार्य करने को उद्बोधित करते हुए कहा है :

"धनिक हो!
देखो यह दृश्य यहाँ आकर तनिक तो।
बचता नहीं है कुछ बाढ़ में,
काल की कराल क्रूर डाढ़ में-
सब कुछ जाता है!
पर्व पर जाते हो स्वयं ही जहाँ,
आये हैं वही ये तीर्थ आप ही तुम्हारे यहाँ!
याचक खड़ा है पर्व ही स्वत:!
आगे आज होके अत:
देकर दया का दान
कुछ तो मिटाओ क्षुधा इनकी महामहान्।"[२]

'नकुल' में भी त्याग का आदर्श ही प्रकट किया गया है जो गांधीजी के ट्रस्टीशिप सिध्दांत के सर्वथा अनुकूल है। उनकी दृष्टि में त्यागभावना को जागृत करके ही अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। अत: उन्होंने अपनी कविताओं में सर्वत्र त्याग का आदर्श प्रकट किया है।

---

१. आर्द्रा : 'चोर' कविता : पृ.८३
२. दूर्वादल : 'बाढ़' कविता से : पृ.९३-९४

चरखा एवं खादी के महत्व का प्रतिपादन :

आर्थिक अभ्युदय के लिये गांधीजी ने अर्थ के समान वितरण तथा ट्रस्टीशिप के सिध्दांत की स्थापना करके ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं मानी। उन्होंने आर्थिक स्वावलंबन एवं अर्थ विकास के लिये चर्खा और खादी के महत्व को भी प्रतिष्ठित किया। उनका मूल लक्ष्य औद्योगिकरण की शक्ति को नष्ट कर भारत की अर्थ संपत्ति को विदेश में एकत्रित होने से रोकना था, तथा भारतीय उद्योग धंधों को विकसित करना था। इसके लिये उन्होंने चरखा उद्योग एवं अन्य ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। उनके अर्थशास्त्र में खादी का विशेष महत्व है। उनके लिये चरखा एवं खादी अहिंसक उद्योगवाद के प्रतीक हैं। सियारामशरणजी ने भी सूत कताई के व्दारा धन प्राप्ति के आदर्श को 'खादी की चादर' कविता में प्रकट किया है। सियारामशरणजी को खादी से विशेष प्रेम था। किंतु श्वास रोग के कारण उन्हें सूत कातने में कठिनाई होती थी। फिर भी वे खादी के ही बने वस्त्र पहनते थे। 'खादी की चादर' कविता में उन्होंने खादी के महत्व को प्रदर्शित किया है। इसमें चम्पा जब परिवारजनों व्दारा ठुकराई जाती है और हर तरफ से निरावलम्ब हो जाती है, तब वह अपनी मृत बेटी को दूध पिलाने के लिये चरखा का ही सहारा लेती है। वह चरखे व्दारा सूत कातकर उसेस खादी की चादर बनवाती है और अपनी आवश्यकतानुसार अर्थ कमाती है :

"कोने में पूनी रक्खी थीं
टिके हुए चरखे के पास;
उठा उन्हें हलके हाथों से-
ठोंका, लेकर गहरी श्वास।
थोड़ी देर बाद ही, क्रम से
चरखा चलने लगा वहाँ।"[१]

---

१. आर्द्रा : 'खादी कीचादर' : कविता : पृ. ११९

उसने सूतइकट्ठा करके अपने पास रख लिया और उस सूत को ले जाकर पण्डितजी से दो आने पैसे माँगे। इस तरह वह चरखा उस अबला नारी की आजीविका का साधन बन गया। इस कविता में चरखा और खादी का उल्लेख युगीन प्रभाव को ही स्पष्ट करता है।उस समय गांधीजी ने चरखा उद्योग का काफी प्रचार किया था। उसीसे प्रभावित होकर सियारामशरणजी ने चम्पा को चरखा से सूत कातते हुए चित्रित किया है जो युगीन प्रभाव के सर्वथा अनुकूल है।

यांत्रिकता का विरोध :

पूँजीवाद के मूल में प्रहार करने के लिये ही गांधीजी ने औद्योगीकरण एवं यांत्रिकता का विरोध किया था। उनका मानाना था कि औद्योगीकरण के कारण – पूंजी कुछ ही लोगों के हाथ में केंद्रित हो जाती है और उसके अभाव में श्रमिक वर्ग को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। वास्तव में औद्योगीकरण से ही पूंजीवाद का जन्म होता है, बेकारी बढ़ती है, जो काम पाँच सौ मजदूर अपने हाथ से करते हैं, वही काम ये मशीनें कम समय में कर देती हैं। इस प्रकार मशीनों के आविष्कार ने इन्सान को बेकार बना दिया है। जो काम पहले मजदूर करते थे वही काम अब मशीनें करने लगी है, इस तरह औद्योगीकरण का यह दुष्परिणाम आया कि बेकारी बढ़ने लगी। दूसरे, औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण जीवन भी विश्रृंखलित होता जा रहा है। जो युवक गाँव से शहर में शिक्षा प्राप्त करने आता है, वह शहर की चमक धमक में खोकर रह जाता है। औद्योगीकरण से वातावरणमें अशुध्दि पैदा होनेपर बीमारियाँ भी बढ़ती जा रही है, इस प्रकार औद्योगीकरण वास्तवमें अभिशाप है। इसीलिये गांधीजीने औद्योगीकरण का विरोध करतेहुए छोटी छोटी मशीनों के उपयोग का ही आग्रह रखा है। गांधीदर्शन से प्रभावित सियारामशरणजी ने भी वैज्ञानिक प्रगति एवं यांत्रिकता का विरोध किया है। वैज्ञानिक सभ्यता के इस युग में मानव सर्व सुख साधन संपन्न होने पर भी क्षुब्ध है। 'यंत्रपुरी' कविता में कवि ने यांत्रीकरण के

कारण विषाक्त हुए जनजीवन का चित्रण किया है। यंत्रचालित दमघोटू जीवन का ही यह परिणाम है कि :

"इस नगरी के नागरिक सभी
हैं अंध अखण्डित जन्मजात,
निज कार्यलग्न सब हैं फिर भी,
हड़बड़ हड़बड़ दिन और रात।"[1]

इस यांत्रिकता के कारण हमारे मन इतने जड़ एवं चेतनाशून्य हो गये हैं कि हमें उन हताहत छिन्नांगों की आवाज सुनाई नहीं देती :

"उन छिन्नांगों की चिल्लाहट रह रह कर अप्रतिहत,
करती होगी वहाँ पवन की छाती में क्षत शत शत।
नहीं प्रभावित यहाँ तनिक भी उनकी उस तड़पन से,
जड़ विकलांग हमारे मन हैं श्रवण और लोचन से।"[2]

इस प्रकार वैज्ञानिक प्रगति से जहाँ मनुष्य को सुख के साधन उपलब्ध हुए हैं, वहीं विनाशक उपकरणों का भी सृजन हुआ है। आज वायुयानों के द्वारा युद्ध में विनाश का कार्य हो रहा है :

" पंख उगाकर देह में, दूरदृष्टि में सिद्ध
मृतक-गंध लेने गया ऊँचे नभ में गिद्ध।"

x x x x

दीख रहा है मनुज भी नव तनु-साधन-लीन,
अब उसके आदर्श हैं भुजग, गीध, वृक, मीन।"[3]

कवि को इस यांत्रिकता के कारण होनेवाले विनाश को देखकर बहुत दुःख होता है। जब वे चारों ओर भयंकर विनाश होते देखते हैं तो उनका दीर्घश्वास वे रोक नहीं पाते :

---

१. दैनिकी : 'यंत्रपुरी' कविता : पृ. २४
२. वही : 'विकलांग' कविता : पृ. ७
३. वही : 'शरीर साधन' कविता : पृ. ५०

"सुनता हूँ जब, विस्फोटित है
चहुँ ओर भयंकर महानाश,
मैं रोक नहीं रखने पाता
यह लघुतम अपना दीर्घश्वास।"[1]

इस प्रकार यह लौह यंत्रिणी दानवता इस जगती को अपने कराल दंतों से पीसे डाल रही है तथा विश्व की मानवता पददलित हो गई है :

"निगल रही है इस जगती को
लौह-यंत्रिणी दानवता;
पड़ी धूल में है बेचारी
आज विश्व की मानवता।"[2]

इन पंक्तियों में औद्योगीकरण को कवि ने अभिशाप ही माना है। 'उन्मुक्त' में भी कवि ने वैज्ञानिक अस्त्रशस्त्रों के प्रयोग को अनुचित बताया है। कभी कभी स्वयं सृजन कर्ता ही इन शस्त्रों के व्दारा होनेवाले विनाश का शिकार बन जाता है। गुणधर इन शस्त्रों के प्रयोग को आत्मघात समझता है अत: वह उसकी निंदा करते हुए कहता है :

"लगता मुझे तो यह, आत्मघात अपने
आयुधों से करते हमीं हैं स्वयं अपना।"[3]

इस प्रकार गांधीजी के समान सियारामशरणजी ने भी औद्योगीकरण एवं यांत्रिकता का विरोध किया है।

<u>उपसंहार</u> :

सियारामशरणजी के काव्यों का अनुशीलन करने पर यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि उनके काव्यों में गांधीवादी अर्थनीति का सफल अंकन

---

१. दैनिकी : 'स्मरण' कविता : पृ. ३१
२. पाथेय : 'शुभागमन' कविता : पृ. १०७
३. उन्मुक्त : पृ. २९

हुआ है। उन्होंने सर्वहारा वर्ग की दयनीय अवस्था का मर्मस्पर्शी चित्र अंकित करते हुए समाज में व्याप्त घोर आर्थिक विषमता पर कुठाराघात किया है तथा इस आर्थिक वैषम्य को मिटाने के लिये ट्रस्टीशिप के सिध्दांत कापूर्ण समर्थन किया है। उन्होंने 'नकुल' काव्य में समवितरण के स्थान पर पूर्ण त्याग का आदर्श ही प्रकट किया है जो परिस्थिति को देखते हुए सर्वथा उचित प्रतीत होता है। उन्होंने जहाँ सर्वहारा वर्ग के प्रति संवेदना प्रकट की है, वहीं उसकी विजय के प्रति भी उनका पूर्ण विश्वास प्रकट हुआ है। आर्थिक अभ्युदय के लिये उन्होंने औद्योगीकरण का विरोध कर खादी एवं चरखा के महत्त्व को ही प्रतिपादित किया है। चरखा एवं खादी का उल्लेख युगीन प्रभाव को ही प्रकट करता है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सियारामशरणजी गांधीजी की अर्थ व्यवस्था से पूर्णतया सहमत थे।

[आ] कला, साहित्य, संस्कृति पक्ष :

प्रस्तावना :

मानव के जीवन विकास में कला, साहित्य एवं संस्कृति का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। कला और मनुष्य का संबंध अविभाज्य है। पाशविक विकारों की तीव्रता कम करने में साहित्य, संगीत और कला का योगदान अप्रतिम रहा है। कला का उद्देश्य मनोरंजन मात्र नहीं है, उसका मूल उद्देश्य जीवन को उन्नत बनाना है। हीन वृत्तियों को उत्तेजित करनेवाली तथा भोगेच्छा को प्रदीप्त करनेवाली कला अश्लील है। अत: हमारे यहाँ कला में लोककल्याणकारी तत्व को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। कला के समान साहित्य का भी हमारे जीवन एवं समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। साहित्य मानवीय भावों को जीवित रखकर मानव व्यक्तित्व को स्थिर रखता है। साहित्य से ही मानव को सुख, शांति एवं आनंद की प्राप्ति होती है। किंतु आज पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण हमारे मनमें भारतीय धर्म एवं संस्कृति

के प्रति अश्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ है। हम अपनी संस्कृति की उपेक्षा कर विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति को अपनाने में अपना गौरव समझने लगे हैं, परिणाम स्वरूप हमारा नैतिक अध:पतन ही हुआ है। किंतु गांधीजी कला एवं साहित्य को केवल मनोरंजन तक ही सीमित नहीं मानते, वे कला को उपयोगिता तत्व से जोड़ देते हैं। उनकी दृष्टिमें सच्चीकला एवं साहित्य वही है जो मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने में सहायक हो। उन्हें भारतीय संस्कृति की उपेक्षा होते देख गहरी ठेस पहुँचती थी। अत: उन्होंने कला, साहित्य एवं संस्कृति संबंधी अपने विचार प्रकट कर उसके वास्तविक रूप को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था।

<u>कला संबंधी दृष्टिकोण</u> :

गांधीजी के विचारानुसार कला आत्ममंथन का प्रसाद है। उसमें जीवन कल्याण की भावना अंतर्निहित रहती है। वे कला में मनोरंजन के साथ साथ नीति के नियंत्रण को आवश्यक मानते हैं। सर्वोत्कृष्ट कला की कसौटी के संबंध में वे कहते हैं : "सर्वोत्कृष्ट कला व्यक्ति भोग्य न होकर सर्वभोग्य होगी और कला जब बाहय अवलम्बनों से अधिक से अधिक मुक्त होगी तभी वह सर्वभोग्य बन सकेगी।"[१]

गांधीजी कला को कला के लिये मानने के स्थान पर जीवन के लिये कला की सार्थकता को स्वीकार करते हैं। कला का उद्देश्य जीवन को उन्नत बनाना है। अत: जनकल्याण, नीति एवं उपयोगिता से रहित कला कला नहीं सौंदर्य मात्र है, उसे उच्चकला नहीं कहा जा सकता। वे हीन वृत्तियों को उत्तेजित करने तथा भोग की वृत्ति को प्रदीप्त करनेवाली कला को अश्लील मानते हैं। कला का उद्देश्य तो मनुष्य के चरित्र का उन्नयन कर उसे उच्च आदर्शों की ओर उन्मुख करना है। "जब कलाकार अनिर्वचनीय सत्य को मूर्तिमान करता है तभी सच्ची कला का जन्म होता है।"[२]

---

१. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : डॉ. अरविंद जोशी पृ. ९३-९४

२. वही : पृ. ९४

गांधीजी ने कला को कल्याणकारी तत्व से संबध्द कर उसे उसी अंश तक स्वीकार किया है जब तक कि वह कल्याणकारी एवं मंगलकारी हो। इस प्रकार वे उत्कृष्ट कलाको लोकमांगलिक तत्वोंसे समन्वित मानते है। जो शिव है, वही सुंदर है और वही सत्य भी है।

सियारामशरणजी भी कला की यही कसौटी स्वीकार करते हैं। इसीलिये उनके काव्य में कोरी भावानुभूति या भावानंद नहीं मिलता। उन्होंने मानव जीवन का परिष्कार करनेवाली सात्त्विक वृत्तियों का अंकन ही अपने काव्य में प्रधान रूप से किया है। सियारामशरणजी कला को कला के लिये न मानकर उसे जीवन से संबध्द मानते हैं। उनकी दृष्टि में कला सोद्देश्य है तथा उपयोगितावाद के आदर्शों को आत्मसात करती हुई चलती है। किंतु गुप्तजी के काव्य का यह उपयोगितावाद प्रचारात्मक रूप नहीं लिये है। वे अपनी बात का प्रचार नहीं करना चाहते। वे तो सहज विनय और सरलता के साथ अपनी बात पाठक के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। उनके काव्य की इस सोद्देश्यता पर चिंतन की गहरी छाप है। "सियारामशरणजी में कला की आराधना कम, और विचारों का सेवन अधिक है। उनका उद्देश्य सौंदर्य-सृष्टि नहीं, प्रत्युत कविता के माध्यम से सत्य का प्रतिपादन करना है। प्रसन्नता उन्हें इसलिये नहीं होती कि वे सुंदर सुरों में गाते हैं, प्रत्युत इसलिये कि उनका गान सार संयुत है। हिन्दी-संसार में उन्हें जो सुयश मिला है वह भी कला के निर्माण के लिये नहीं, प्रत्युत विचारों की शुध्दता एवं भावों की पवित्रता के कारण ही।"[१]

काव्य संबंधी विचार :

सियारामशरणजी काव्य का लक्ष्य मनोविकारों की व्यंजना करना या केवल मनोरंजन करना ही नहीं मानते थे। उनकी राय में उसमें मानवीय वृत्तियों को परिष्कृत करने की क्षमता होनी चाहिए। इसीलिये उनकी कविता में सौंदर्य के स्थान पर शिव का ही प्राधान्य है। यह शिव सत्य

---

१. सियारामशरण गुप्त : सं. डॉ. नगेन्द्र : ले. रामधारीसिंह दिनकर : पृ. ११६

भी है। गांधीवाद व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही दृष्टियों से शिव का पर्याय है, इसलिये वे गांधीवाद में ही वर्तमान समस्याओं और विषमताओं का हल खोजते हैं। पीड़ित एवं दलित मानवता के प्रति उनके मनमें गहरी संवेदना है। उन्होंने अपनी अधिकांश कविताओं में इस वसुधा के दीन-हीन मानवों के प्रति करुणा भाव प्रदर्शित किया है। उनके काव्य में कहीं भी वर्ग विद्वेष, घृणाभाव, आक्रोश या हिंसा का प्रतिफलन नहीं हुआ। उनकी समूची काव्यधारा मानव जीवन के सुधार की पवित्र भावना को लेकर ही पल्लवित हुई है। इसीलिये उसमें क्षमा, करुणा, प्रेम, दया, त्याग, उत्सर्ग, सत्य, अहिंसा आदि उदात्त मानवीय गुणों का प्रसार हुआ है। आत्म परिष्करण के लिये उन्होंने सत्य की साधना के प्रति आग्रह प्रकट कर सत्याग्रह का पथ अपनाने का ही संदेश दिया है। वे मर्यादा एवं संयम के कवि हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति उनके मनमें गहरी आस्था है। वे भारतीय संस्कृति की इस मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते हैं। इसलिये उन्होंने भारतीय संस्कृति के गरिमामय रूप को उद्घाटित कर वर्तमान दशा को सुधारने का प्रयत्न किया है। उनके काव्य में कहीं भी सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास नहीं होने पाया। सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि जीवन के शाश्वत मूल्यों को ग्रहण करने के कारण उनका काव्य केवल किसी एक देश या काल की सीमित परिधि में आबध्द नहीं है, बल्कि वह संपूर्ण विश्व की मानवता के कल्याण के लिये सहायक सिध्द हो सकता है। गांधीवाद की सर्वजनीन भूमि के आदर्श पर सियारामशरणजी ने जिन लोकमंगलकारी आदर्शों एवं मूल्यों की प्रतिष्ठा की है वे चिरकाल तक मानवता की रक्षा करने में सक्षम हैं। उनकी कविता में गांधीवाद के प्रमुख सिध्दांत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को भी प्रश्रय मिला है। निम्न पंक्तियों में विश्व बंधुत्व की भावना ही मुखरित हुई है :

> "न कुल, न गोत्र, न जाति, सभी का होकर निज जन,
> देगा सबको भव्य भविष्यत् का आश्वासन।"[१]

---

१. नकुल : पृ. १७

इन पंक्तियों में कवि व्यक्ति का न होकर समग्र सृष्टि का हो गया है।

सियारामशरणजी भोग की अपेक्षा त्याग और आत्मपरिष्कार पर ही अधिक बल देते थे। निम्नपंक्तियों में कवि ने स्वच्छ निर्मल जीवन की याचना कर परिष्कृत जीवन के प्रति ही आग्रह प्रकट किया है :

"हे जीवन-स्वामी तुम हमको
जल-सा उज्वल जीवन दो !
हमें सदा जल के समान ही
स्वच्छ और निर्मल मन दो।"[1]

जीवन उन्नयन के लिये सत्साहस की भी आवश्यकता होती है। इसीसे कवि सत्साहस रूपी धन की भी याचना करता हुआ दृष्टिगत होता है :

"स्थान न क्यों नीचे ही पावें,
पर तप में ऊपर चढ़ जावें,
गिर कर भी क्षिति को सरसावें,
ऐसा सत्साहस धन दो।"[2]

कवि प्रकृति द्वारा भी आत्मपरिष्कार का संदेश देता है।

इस प्रकार गुप्तजी का काव्यादर्श मात्र कला के सौंदर्य को प्रकट करना ही नहीं है। वे तो कला के माध्यम से मानव समाज को जीवन के कल्याण की उच्च भाव सामग्री प्रदान करना चाहते हैं। रीतिकालीन कवियों की भाँति कला की सूक्ष्म मीनाकारी से अपनी कविता कामिनी का श्रृंगार करना कवि का उद्देश्य नहीं है, वह तो कबीर और तुलसी जैसे भक्त कवियों की भाँति मानव कल्याण की पवित्र भावना को लेकर अपने काव्य कलेवर को संजोने का आग्रही है। उसकी कविताओं में धरती के

---

१. दूर्वा-दल : 'सुजीवन' कविता : पृ. ३३
२. वही

दीन-हीन उपेक्षित मानवों का ही चित्रण अधिक हुआ है। 'स्वप्नभंग' कविता में कवि नंदनवन के प्रसूनों से अपनी काव्यवधू का श्रृंगार करना चाहता है, किंतु यथार्थ के धरातल पर आते ही उन्हें इस सत्य को स्वीकार करना पड़ता है कि नंदनवन के प्रसूनों से काव्य वधू का श्रृंगार नहीं किया जा सकता। उसका वास्तविक श्रृंगार तो धरती के उपेक्षित एवं अकिंचन प्राणियों के चित्रण में ही संभव है। स्पष्ट है कि कवि काव्य में श्रृंगार वर्णन के स्थान पर धरती के उपेक्षित एवं अकिंचन प्राणियों का चित्रण करने का पक्षपाती है। निम्न पंक्तियों में यही आग्रह प्रकट हुआ है :

सोचा क्या है इस प्रसून का, मैं यह तुझे बताऊँ ?-
इच्छा है, इसको लेकर मैं चुपके-चुपके जाऊँ,
जड़ दूँ अपनी काव्य वधू के जूड़े में पीछे से।
महक उठे मेरे आँगन में ऊपर तक नीचे से।
विमना अनाभूषिता तब वह चौंक पड़े ज्यों जगकर,
अपने कज्जल कलित नयन वे डाले इस पर, उस पर; -
किसका परस जगा यह उसमें !
टूटा मेरा सपना।"[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उनकी कविता में न तो व्यर्थ की काल्पनिक रंगीनियाँ हैं और न इस धरती के यथार्थ से पलायन करने की मनोवृत्ति है। उनकी कविताओं में रीतिकालीन कवियों की भाँति व्यर्थ ही टीमटाम एवं आडम्बर नहीं है। उन्होंने अपनी इन कृतियों में स्वदेश प्रेम, अतीत का गौरवगान, गांधीवादी विचारधारा के प्रति श्रध्दा राष्ट्रीय एकता का समर्थन, भारतीय संस्कृति के नवनिर्माण का आग्रह, सामाजिक जीवन की कुरीतियों एवं विसंगतियों का निराकरण आदि विविध भावों का प्रतिपादन किया है। कला के सौंदर्य पक्ष की ओर वस्तुत: कवि का ध्यान ही नहीं गया है। उच्च आदर्शों से अपने काव्य

---

१. दैनिकी : 'स्वप्नभंग' : पृ. ४४

को संजोना ही उसका मुख्य लक्ष्य रहा है। इसीलिये 'उन्मुक्त' काव्य में कला सौंदर्य हमें उतना नहीं मिलता जितना भावों का सौंदर्य। विचारों का जो संघर्ष उनमे मन:मस्तिष्क में छिड़ा था, उसीको सहज सात्त्विक अभिव्यक्ति उन्होंने अपने काव्य में की है। "उनके काव्य का रूप बड़ा ही संयमित, मर्यादित और सात्त्विक है।उसमें उत्तेजना का नितांत अभाव है। इन्हें पढ़कर मनमें अपूर्व शांति का अनुभव होता है। अपने तपपूत और साधनामय जीवन के मंथन से उन्होंने काव्य का अमृत ही हमें प्रदान किया है, जीवन का रस नहीं। इसीलिये रसिक कवि की सौंदर्य प्रियता, प्रेम और श्रृंगार के भाव गुप्तजी के काव्य में प्रकट नहीं हुए। उनकी कविता रस रंगों के संसार से अछूती है। नारी का रूप सौंदर्य, यौवन और विलास की आनंद क्रीड़ाएँ, ऐहिक प्रेम की व्याकुलता, प्रणय के विविध रूप की ओर कवि की दृष्टि ही नहीं गई है। जहाँ कहीं श्रृंगार का प्रसंग आया है, कवि की वाणी संत और ऋषि रूप धारण कर लेती है। 'उन्मुक्त' काव्य में भी श्रृंगार के बहुत ही हल्के छींटे कहीं कहीं देखने को मिलते है। समूचा काव्य केवल युध्द की विभीषिकाओं के चित्रण से भरा है।"[1] 'दैनिकी' में कवि ने काव्य के संबंध में अपना दृष्टिकोण प्रकट करते हुए कहा है कि सच्चा काव्य वह है जो धरती के दु:ख दैन्य का निवारण करने में सक्षम हो। काव्य के वायवी रूप के प्रति उन्होंने अनास्था प्रकट की है। उन्हें मिट्टी का काव्य ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है। उनके मत से काव्य में कोरे आनंद को ढूंढना काव्य कामिनी के सौंदर्य को दूषित करना है। जिस काव्य में जीवन का स्पंदन सुनाई दे वही काव्य उनकी दृष्टि में सच्चा काव्य है। काव्य के लिये माधुर्य का होना अनिवार्य नहीं है। इस प्रकार कवि ने कला के समान काव्य में भी उपयोगिता तत्त्व को ही महत्त्व प्रदान किया है :

"वाणी का उल्लास मिला, - जो नहीं मात्र कोयल में;
प्राणों का उच्छ्वास उठा - जो नहीं मात्र कोमल में।
मधु में मादक ही प्रधान है, कहाँ जागरण उसमें ?

---

१. गुप्तजी और उन्मुक्त : फूलचंद जैन : सारंग : पृ.३२६

सुनो, सुनो, उठकर अवलोको, यह है तीव्र पुरुष में।"[1]

गुप्तजी की धारणा यह है कि इस धरती के दीन-हीन प्राणियों के दु:ख, दैन्य, दर्प ही आज के साहित्यकारों के लिये चिरंतन सत्य के रूप में प्रस्तुत है, अत: उनकी ओर से उदासीन रहना पलायन करना है।

काव्य प्रयोजन :

सियारामशरणजी काव्य का मूल प्रयोजन स्वांत: सुखाय अथवा आत्मानंद की उपलब्धि को मानकर लिखते हैं "कविता आत्मसंतोष का ही दूसरा नाम है।"[2] यह आत्मानंद साधारण ऐन्द्रिय आनंद से भिन्न कोटिका होता है और इसकी अनुभूति ही कृतिकार का सर्वस्व है। गुप्तजी ने 'निज कवित्त' लेख में इस आनंदोन्मेष का इन शब्दों में वर्णन किया है : "अपनी रचना मुझे प्रिय जान पड़ती है। कभी कभी उसे पाकर ऐसा हुआ है, जैसे इससे आगे अब और कुछ नहीं रह गया। उस समय विश्वास नहीं होता कि इससे अधिक संसार में किसी के पास कुछ और हो सकता है। एकाएक अलौकिक आनंद में सराबोर हो उठता हूँ। जान पड़ता है, जैसे मेरे हाथ कोई ऐसा पारस पड़ गया हो, जिसके स्पर्श से लोहे का यह संसार सोने ही सोने में बदलकर एकाएकअनिंद्य और अमूल्य हो उठा है।"[3] आंतरिक सुख की अनुभूति केवल कवि तक ही सीमित नहीं रहती वरन् प्रमाता को भी इसकी उपलब्धि सहज रूप से हो सकती है। आनंद सृष्टिमें रक्षम रचना में लोक हितकारी तत्वों का अंतर्भाव स्वयमेव ही हो जाता है। इस प्रकार ज्ञान से आनंद प्राप्ति या आनंद से और भी अधिक ज्ञानार्जन करना ही काव्य का उच्चतम लक्ष्य है। 'तुलसीदास' कविता में सियाराम-शरणजी ने प्रकारांतर से इसी ओर संकेत किया है।

"सुख में गीत तुम्हारे गाकर
सुख विशेष हम पाते,

१. दैनिकी : 'मधुकर्कशा' कविता : पृ. ६९
२. झूठ-सच : पृ. ८६
३. वही : पृ. १३०-१३१

दुख में हमें सांत्वना देने
वाक्य तुम्हारे आते।"[1]

स्पष्ट है कि आनंदानुभूति के अतिरिक्त लोकमानस को सांत्वना प्रदान करना या ज्ञानार्जन को भी कवि ने काव्य का उद्देश्य माना है। इसीलिये 'कवि श्री' के बारे में वह लिखता है - "हमारा प्रयत्न है, 'कवि श्री' जिनके हाथों में हो, वह उनकी संस्कारशील रुचि का ही परिचय न दे, वरन् उनकी भावनाओं का उन्नयन भी कर सके। यह उन्नयन कविता के व्दारा ही सध सकता है।"[2] भावनाओं के उन्नयन का यह प्रयोजन प्राय: सभी विव्दानों व्दारा मान्य रहा है। किंतु वे नैतिक मूल्यों के साथ साथ आनंद और लोकशिक्षा को भी समान महत्त्व देते हैं। काव्य के इन अंतरंग प्रयोजनों की सिध्दि में विश्वास होने के कारण ही उन्होंने बाहय फल प्राप्ति की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। वे यशलिप्सा से मुक्त होकर मंगलदायक काव्य की रचना का ही संदेश देते हैं। 'कवि की जीविका' शीर्षक लेख में उन्होंने कवि को अर्थसंचय के मोह का त्याग करने का उद्बोधन दिया है :

"जो कवि अपनी कविता को कुछ कमाने के उद्देश्य से बाजारमें लेकर बैठ जायगा, उसका पतन निश्चय है। x x x x अन्न वस्त्र की ही अपेक्षा है तो उसे चाहिए कि खेत पर जाकर तपती हुई धरती में हल चलाये, मेहनत मजदूरी करे, अथवा छोटा मोटा कोई हस्तशिल्प आता हो, तो उसका सहारा ले, वहाँ जाकर उसकी कविता और सप्राण हो उठेगी। श्रम के पसीने से निखरकर कविता में निर्मलता का नया सौंदर्य झलक उठता है।"[3] स्पष्टत: कवि जीविकोपार्जन के लिये शरीरश्रम करने पर बल देते हैं। उनका यह दृष्टिकोण राष्ट्रीय विचारधारा के सर्वथा अनुरूप है। गांधीवाद के

---

१. दूर्वादल : 'तुलसीदास' : पृ. ५७
२. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिध्दांत : डॉ. सुरेशचंद्र गुप्त : पृ. ३२० से उद्धृत
३. हंस : नवम्बर १९४१ : पृ. १५३

प्रभाव के कारण ही कवि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त शारीरिक श्रम करने का संदेश देता हुआ दृष्टिगत होता है। इस प्रकार सियारामशरणजी ने काव्य को कवि के मनोवेगों का उच्छ्वास मानकर उसमें लोकमांगलिक तत्वों की अवस्थिति पर जोर दिया है। गांधीदर्शन के सात्विक तत्वों की अभिव्यक्ति से यह बात सहज ही स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने लोकहित के समावेश का ध्यान अपने काव्य में विशेष रूप से रखा है। "गांधीवाद में इनकी अटूट आस्था थी, इसलिये इनकी सभी रचनाओं पर अहिंसा, सत्य, करुणा, विश्व बंधुत्व, शांति आदि गांधीवादी मूल्यों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। जिन रचनाओं में इन्होंने प्राचीन भारतीय आख्यानों को आधार बनाया है, वहाँ भी ये इन्हीं मूल्यों की प्रतिष्ठा करते दिखाई देते हैं।"[१] 'जयहिन्द' में कवि ने स्वतंत्र देश में कवि कर्तव्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि देश की अखण्ड एकता की स्थापना करना कवि का कर्तव्य है। स्वतंत्र भारत के कवि को आहवान देते हुए उन्होंने लिखा है :

"कवि के स्वतंत्र देश,
तेरे लिये कौन नया गीत आज गाऊँ मैं ?
उमड़ रहे हैं जो भाव अशेष
कैसे किस भाँति उन्हें स्वर में सजाऊँ मैं ?
क्षिति के किरीट रत्न तेरे हिमालय से
ला सकूँ पवित्रता गगन की।"[२]

इसमें जहाँ राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुई है, वहीं कवि ने भावों की पवित्रता एवं निर्मलता के प्रति भी आग्रह प्रकट किया है।

कुछ कविताओं को छोड़कर सियारामशरणजी सर्वत्र सोद्देश्य हैं। "सियारामशरणजी की सोद्देश्यता तो बिलकुल ही चिंतन के आवरण में प्रच्छन्न

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र : पृ. ५४६
२. जयहिन्द : पृ. १७

है, इसलिये उसे हम किसी भी प्रकार प्रचार का पर्याय नहीं मान सकते। वे काव्य की भूमि में विचारक की भाँति गंभीरता और सहज विनय के साथ उतरते हैं तथा प्रत्येक वस्तु के अस्तित्त्व का सत्यान्वेषी पुरुषों की भाँति विश्लेषण करते हैं। इस विश्लेषण की प्रक्रिया से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि आनंद उनका उद्देश्य नहीं है। वह इससे कुछ अधिक ठोस लक्ष्य की तलाश में है। जीवन की छोटी छोटी बातों में भी उन्हें किसी महान् सत्य की ध्वनि सुनाई पड़ती है।"[1] वे प्रधानत: नीति व्यंजक कवि हैं। अत: उनके काव्य में सर्वत्र नीति के प्रति प्रबल आग्रह रहा है। संक्षेपमें सियारामशरणजी मिट्टी की झनझनाहट को ही इस युग का सच्चा काव्य मानते हैं।

भारतीय संस्कृति के आख्याता :

भारतीय संस्कृति के प्रति गुप्तजी की गहरी आस्था है। उनका विश्वास संस्कृतियों के परस्परावलंब की ओर भी है। किंतु वह केवल विचारों तक ही सीमित है। उन्हें अन्य संस्कृतियों की वे बाते प्रिय हैं जिनसे मानव जीवन को प्रेरणा मिलती है, जिनमें दीन दु:खियों के प्रति सहानुभूति को विशेष महत्त्व दिया गया है। 'अमृतपुत्र' की रचना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। 'मौर्य विजय' एवं 'दूर्वा-दल' में भी कवि का भारतीय संस्कृति के प्रति श्रध्दाभाव ही प्रकट हुआ है। 'मौर्य विजय' में कवि ने स्थान स्थान पर सैनिकों के गीतों के माध्यम से भारतीय संस्कृति की महान परंपरा को ही उद्घाटित किया है :

"इसी भूमि पर रामकृष्ण ने जन्म लिया है,
ऋषि-मुनियों ने प्रथम ज्ञान-विस्तार किया है।
है क्या कोई देश यहाँ से जो न जिया है ?
तदुपदेश - पियूष सभी ने यहाँ पिया है।

---

१. सियारामशरण गुप्त : सं. डॉ. नगेन्द्र : पृ. ११७

नर क्या, इसको अवलोक कर
कहते हैं सुर भी यही –
जय जय भारतवासी कृती,
जय जय जय भारत मही ।"[1]

कवि भारतीय संस्कृति के इस गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहता है। इसीलिये उन्होंने अतीत के गौरव व्दारा वर्तमान में सत्वहीन होती हुई भारतीय जनता में अपनी संस्कृति के प्रति आस्था जगाते हुए पुन: आत्मसुधार के उसी उच्च नैतिक स्तर पर जीवन जीने की प्रेरणा दी है। एथेना के परिणयोत्सव प्रसंग को चित्रित कर उन्होंने दो संस्कृतियों के समन्वय का भी प्रयत्न किया है।

'दूर्वा-दल' में भी कवि का भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम ही प्रकट हुआ है। आज से तीन सौ वर्ष पूर्व तुलसीदासजी ने जो भक्ति की अजस्त्र धारा लोकमानस में प्रवाहित की थी, वह अब भी अक्षुण्ण है :

"अब भी ह्रदय हरित है उसके
सुकृत-सुधा सिंचन से।
हे सुकवे ! सुकृतार्थ हुए हम,
तव सत्कृति-कीर्तन से।"[2]

तुलसीदासजी ने हमारे ज्ञान के दीपक को प्रज्वलित कर मुक्त होने का राममंत्र सिखाया। कवि का मन तुलसीदासजी जैसे संत को पाकर गौरवान्वित हो उठता है :

"तुम्हें प्राप्त कर शीश हमारा
है अति गर्वोन्नत यह,

---

१. मौर्य विजय : पृ. ३२
२. दूर्वादल : 'तुलसीदास' : पृ. ५४

भक्तिभार से पद-कमलों में
होता स्वयं प्रणत वह।"[1]

'बुध्द वचन' के अनुवाद से कवि का प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम ही झलकता है। "प्राचीन के प्रति वे आस्थावान हैं, साथ ही नूतन के प्रति उनके हृदय में स्वागत का भाव है। नर की प्रतिष्ठा के वे भक्त हैं और मानवोचित गुणों की व्याख्या और जीवन में उनकी प्राप्ति को ही वे व्यक्ति और समष्टि का ध्येय मानते हैं।"[2] 'नकुल' में कवि ने अर्जुन को अमरपुरी के अपार वैभव से अप्रभावित हो लौट आने के प्रसंग में उसकी मानवीय उच्चता की ओर संकेत करते हुए मानवत्व में देवत्व की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया है। अर्जुन ने अपने उदात्त गुणों से मृण्मयी वसुंधरा को स्वर्ग से भी महत्तम रूप प्रदान कर दिया :

"ऊर्ध्व लोक में धन्य तुम्हारा समुन्नयन यह!
प्रकटित तुमने किया सहजपन से ही आके,
सच्चे सुत हो तुम्हीं मृण्मयी वसुंधरा के।
उसके निम्न नितांत सर्वसाधारण जन सम,
आये हो तुम यहाँ स्वर्ग में मान्य महत्तम।"[3]

अर्जुन के व्यक्तित्व का अमरपुरी के देवताओं पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपना नीति नियम भी बदल दिया :

"अमरपुरी की इस सुनीति में है ध्रुव निष्ठा; -
करो अमर पद प्राप्त, वरो तब यहाँ प्रतिष्ठा।
कैसा है वह मर्त्य, हुआ है जिसके कारण,
आज अचानक सुचिर काल का नियम निवारण।"[4]

---

१. दूर्वादल : 'तुलसीदास' : पृ. ५८
२. सियारामशरण गुप्त : सं. डॉ. नगेन्द्र : पृ. १७
३. नकुल : पृ. ३३
४. वही : पृ. २७

इस प्रकार अर्जुन के कारण इस वसुधा को स्वर्ग का दुर्लभ योग प्राप्त हुआ है। कवि का मन ऐसे महानतम चरित्रों को पाकर गद्गद् हो उठता है। कवि ने इन चरित्रों के गुणगान व्दारा वर्तमान भारतीय जनता को भी इन्हीं उच्च मानवीय गुणों से विभूषित करने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सियारामशरणजी भारतीय संस्कृति के कवि हैं। नवीनजी के शब्दों में "मैं सियाराम को, उनके अग्रज के सदृश ही भारतीय संस्कृति का स्मारक, परिवर्द्धक प्रचारक, नैष्ठिक कवि मानता हूँ।"[१] इससे स्पष्ट हो जाता है कि सियारामशरणजी भारतीय संस्कृति के अमर गायक कवि थे।

शिक्षा संबंधी विचार :

गांधीजी उसीको शिक्षा मानते थे जिससे चित्तशुध्दि, इन्द्रिय निग्रह निर्भयता, स्वावलंबन और गुलामी से मुक्ति पाने की प्रेरणा मिले। वे हस्तशिल्प पर आधारित स्वावलंबन की प्रवृत्ति को प्रेरित करनेवाली शिक्षा प्रणाली को ही महत्त्वपूर्ण मानते थे। उनके विचारानुसार शिक्षा को जीवनोपयोगी तथा सर्वतोमुखी विकास में तथा ग्रामीण उद्योग धंधों में सहायक होना चाहिए। गांधीजी उद्योग व्दारा शिक्षा के समर्थक थे। उनके अनुसार "उद्योग भी ऐसा होना चाहिए जिससे निर्वाह हो सके। उससे उत्पन्न होनेवाली वस्तु जनता के जीवन में उपयोगी हो सके।"[२] वे चाहते थे कि विद्यार्थी उद्योगव्दारा खुद कमाकर पढ़े और पढ़ाई का खर्च भी उठावें। गांधीजी पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के समर्थक नहीं थे। उनका मानना था कि पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली ने नवशिक्षितों में ग्रामीण संस्कृति के प्रतिघृणाभाव जगाया है। सियारामशरणजी ने यद्यपि शिक्षा के बारे में प्रत्यक्ष रुप से कहीं अपने विचार प्रकट नहीं किये, किंतु उन्होंने 'डाक्टर' शीर्षक कविता में

---

१. प्रताप : ४ सितम्बर १९५२ ई. श्री. बालकृष्ण शर्मा नवीन।
२. गांधी विचार दोहन : किशोरलाल मशरूवाला : पृ. १५४

ग्रामीण समाज के प्रति घृणा और उपेक्षा का भाव रखनेवाले डाक्टर की स्वार्थ भावना का यथार्थ चित्र अंकित कर नवशिक्षित युवकों की इसी मनोवृत्ति पर प्रहार किया है। वह डाक्टर अपनी पत्नी के वियोग से व्यथित है, इस वियोग व्यथा के कारण उसका मन अपने कार्य में किंचित मात्र भी नहीं लगता। वह अपने मानसिक अवसाद को मिटाने के लिये नदी किनारे बैठा हुआ है कि तभी एक ग्रामीण किसान डाक्टर की सहायता लेने के लिये उसके पास आता है। किंतु उस डाक्टर के मन में गरीब एवं ग्रामीण लोगों के प्रति तिरस्कार भाव है, अत: उसे उस समय उस किसानका उसकी विश्रांति में बाधा पहुँचाना खटकता है। वह उसके प्रति अपने उपेक्षा भाव को इस तरह प्रकट करता है :

"सम्मुख एक 'गँवार' देखकर् नाक सिकोड़ी;
अरे, यहाँ भी शांति नहीं मिल सकती थोड़ी।"[1]

इन पंक्तियों में डाक्टर का तिरस्कार भाव ही प्रकट हुआ है। वह डाक्टर अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन एवं धन के प्रति लालची है, उस किसान की दयनीय अवस्था को देखकर वह सोचता है कि उसे उस किसान से कुछ भी प्राप्त न हो सकेगा। अत: वह समस्त वृत्तांत सुनने के बाद भी उसके साथ जाने को उद्यत नहीं होता। और यह कहकर उसे टालना चाहता है :

"जीती तेरे लिये अभी तक होगी क्या वह ?
जा थाने में, वहीं सुनाना सब ब्योरा वह।"[2]

किसान यद्यपि गरीब है, किंतु वह भेंट के रूप में अपने पास जो कुछ जमा पूँजी शेष है, वह देकर भी उस नारी का जीवन बचाना चाहता है। किंतु डाक्टर यह कहकर कि "दे सकने के योग्य अरे पहले तो होले" उसे वहाँ से भगा देता है। उचित समय पर डाक्टरी सहायता न मिलने पर एवं योग्य उपचार न हो सकने पर वह स्त्री मृत्यु से संघर्ष करते हुए अपना दम तोड़ देती है। उसी समय डाक्टर को नौकर से यह समाचार मिलता है

---

१. आर्द्रा : 'डाक्टर' : पृ. ८६
२. वही : पृ. ८८

कि मालकिन डूबकर मर गई। इस समाचार को सुनकर मानो डाक्टर पर वज्रपात सा हुआ। वह निर्दयतापूर्वक अपनी छाती पीटता हुआ इस आशा के साथ उसी समय नदी की ओर दौड गया कि कहीं वह अब भी जीवित हो। किंतु उनके पहुँचने से पहले ही उसका जहान लुट चुका था। अब उसके पास गम मनाने के अलावा अन्य कोई उपाय शेष नहीं रह गया था। प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि ने उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवकों को इसी मनोवृत्ति की ओर संकेत कर उन्हें अपने कर्तव्य के प्रति जागृत करना चाहा है।

मातृभाषा के महत्व का निरूपण :

गांधीजी के समान ही सियारामशरणजी भी अंग्रेजी भाषा की अपेक्षा हिन्दी भाषा को अधिक गौरवशाली मानते हैं। उन्हें अन्य भाषा का आधिपत्य स्वीकार नहीं है। इसीसे स्वतंत्रता के अरुणोदय पर कवि को इस बात का संतोष है कि गुलामी की अंधकारपूर्ण रात्रि में हमारी जो अमल आशाएँ कल्पनामात्र रह गई थीं, वही आशाएँ तथा प्रेममयी श्रेष्ठ अभिलाषाएँ आज हमारी आत्मबल से सशक्त भाषा में अभिव्यक्ति पायेगी। आज हम पर बलपूर्वक लादी गई विदेशी भाषा की परवशता नहीं है। हमें अपनी आत्मबल से सशक्त भाषा प्राप्त हुई है। अत: हमारे अंतरस्थ भाव विदेशी भाषा में बिखरकर विकृत नहीं होंगे। यह हमारे लिये गौरव का विषय है :

"तेरी उच्च आशाएँ
प्रेममयी श्रेष्ठ अभिलाषाएँ
होंगी अभिव्यक्त, --
आत्मबल से सशक्त
आज तेरी निज भाषा में;
परवशता की कर्म नाशा में,
विकृत न होंगे भाव भीतर के,
बल से मढ़ी हुई विभाषा में बिखर के।"[1]

---

१. जयहिन्द : पृ. ७-८

इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि कवि मातृभाषा को ही आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम मानता है तथा उसीके विकास पर बल देता है। गांधीजी भी अंग्रेजी भाषा की अपेक्षा हिन्दी भाषा को ही अधिक सशक्त मानते थे। सियारामशरणजी ने भी आत्मबल से सशक्त मातृभाषा के महत्त्व को प्रतिष्ठित कर गांधीविचारों का समर्थन किया है। अंग्रेजी भाषा के प्रति हमारे नवयुवानों का अत्यधिक मोह देखकर कवि को दुःख होता है। "भाषा के संबंध में हमारे शिक्षितों की जो मनोवृत्ति है, उसने मेरे हृदय में निरंतर पीड़ा पहुँचाई है।"[1] यही वह मोह है, जिसने हमारी नस नस में गुलामी भर दी है। चाहे दस पंद्रह रुपये पानेवाला साधारण व्यक्ति हो चाहे पढ़ालिखा शिक्षित व्यक्ति हो- सभी का प्रयत्न यही रहता है कि वह अंग्रेज बन जाय। हम बात बात में अंग्रेजी का प्रयोग करने की कोशिश करते हैं किंतु अपनी भाषा के ऊपर इस तरह अंगरेज को लादकर क्या कभी हम अंगरेज हो सकते हैं ?

इसका अर्थ यह नहीं कि गुप्तजी अन्य भाषा के महत्त्व को नकारते हैं। उनका माननाहै कि एक भाषा दूसरी भाषा के बिना जीवित नहीं रह सकती - "एक परिवार दूसरे परिवार के साथ जिस तरह संबंध स्थापित करता है, उसी तरह एक भाषा दूसरी भाषा से करती है। ऐसा न होतो वंशवृध्दि के अभाव से थोड़े ही काल में उसे मृत हो जाना पड़े। यह संसार ही ऐसा है कि इसमें एक के भीतर नहीं, अनेक के भीतर ही पूर्णता का आवास है।"[2] उन्हें दुःख केवल इसी बात का है कि हमारे शिक्षित नवयुवकों ने अपने अस्तित्त्व को मिटाकर अन्य भाषा को गले लगाया है। किंतु कविका मानना है कि "दूसरे से मिलने का जो आनंद है वह तभी है जब अपने का अस्तित्त्व रक्खा जाय। हमारा शिक्षित अपने अस्तित्त्व को मिटाकर चकनाचूर कर चुका है। उसके विदेशी का यह मोह किसी बहुत ऊँचे तत्त्व को लेकर नहीं है। अपनी भाषा को, अपने देश को दलित करके ही उसने विदेशी को अपनाया है।"[3] अपनी मातृभाषा की उपेक्षा कर विदेशी भाषा को अपनाना उन्हें सहय

---

१. झूठ-सच : अन्य भाषा का मोह लेख से : सियारामशरण गुप्त : पृ.३२
२. वही : पृ.३७
३. वही : पृ.३७

नहीं। इसीलिये उन्होंने इस लेख में हमारे नवयुवकों की मनोवृत्तिपर प्रहार किया है और हिन्दी के प्रति अपने आग्रह को प्रकट किया है।

उपसंहार :

इस प्रकार उनके काव्यों का अनुशीलन करने पर यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य के प्रति पूर्णतया सजग हैं। जो साहित्य समाज की उन्नति में बाधक है या निरूद्देश्य है, वह उनकी दृष्टि में निरर्थक है। उनकी कविताएँ सोद्देश्य हैं तथा लोकमंगल की पुनीत भावनाओं से अनुप्राणित हैं। उसमें मानव के आत्मसुधार का उच्चतम लक्ष्य अंतर्निहित है। मानव मन के शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर और रागव्देषादि असात्त्विक भावनाओं से ग्रस्त मानव जाति के अध:पतन पर उन्हें मर्मांतिक पीड़ा होती है। अत: उन्होंने सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम, दया आदि मानवता के चिरंतन आदर्शों की महत्ता को प्रकट कर मानवमन को ऊर्ध्वगामी बनने का संदेश दिया है। 'उन्मुक्त,' 'दैनिकी,' आदि रचनाओं में युध्द की निस्सारता को प्रकट किया गया है तो 'गोपिका' तथा 'नकुल' में प्रेम तथा त्याग का अपूर्व सामंजस्य दिखाया गया है। उन्होंने व्यर्थ की काल्पनिक रंगीनियों से अपने काव्य को सर्वथा मुक्त रखकर जीवन के यथार्थ को ही उद्‌घाटित करने का प्रयत्न किया है। इसीलिये उनके काव्य में शृंगार का वर्णन बहुत अल्पमात्रा में दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति के प्रति उनके मनमें गहरी आस्था है और उन्होंने जहाँ भी अवसर मिला है, संस्कृति का गुणगान किया है। गांधीजी के समान वे भी मातृभाषा के महत्त्व को स्वीकार करते हैं, और हमारे नवयुवकों के अंग्रेजी की ओर अत्यधिक झुकाव को देखकर उन्हें असह्य वेदना होती है। उन्होंने 'अन्यभाषा का मोह' लेख में हमारे शिक्षित नवयुवकों पर व्यंग्य करते हुए अपनी मातृभाषा को अपनाने का ही आदेश दिया है। स्पष्ट है कि उनके काव्य में गांधीजी के विचारों का पूर्ण समर्थन दृष्टिगत होता है। उन्होंने गांधी विचारधारा से अनुप्राणित काव्य-संपदा ही साहित्य-जगत को प्रदान की है।